रत्नकुमार सांभरिया

ई-मेल- sambhriark@gmail.com

वजूद

भरी जवानी में विधवा हो गई रमिया को ज़मींदार की टहलुवई पति से विरासत में मिली। उसके लिए श्रम और भूख एक-दूसरे के पर्याय थे। दिनभर खटना नियति होने के बावजूद रमिया ने एक गुस्ताखी की। वह छः वर्षीय अपने इकलौते बेटे को स्कूल भेजने लग गई।

रमिया ज़मींदार के आँगन में झाड़ू-बुहारी कर रही थी। उसने हवेली की छाया में टाट का एक टुकड़ा बिछाया हुआ था। लड़का उस पर बैठा प्रवेषिका पढ़ने में तल्लीन था। ज़मींदार पीठ पर हाथ बाँधे बरामदे में टहल रहा था। उसकी नज़रें रमिया के अध्ययनरत् लड़के पर थीं, एकटक। लड़के के हाथ की किताब उसकी आँख की फांस थी। दम्भ, ईर्ष्या और क्रोध से उसके नेत्र आग्नेय थे।

ज़मींदार बाघ जैसी घाघ निगाह लड़के को घूरता-गुर्राता रहा। उसने लम्बी साँस मारी, जैसे जलकर धुआँ निकला हो। वह लम्बे क़दम रखता आक्रोष दबाए लड़के के पास आ खड़ा हुआ था। लड़के के हाथ की किताब छीनकर उसने कुत्सा से कहा- ‘‘बेटे, बेकार की माथापच्ची में क्या रखा है? काम में अपनी माँ का हाथ बँटा।‘‘

उसने जेब से एक रुपया निकाला और लड़के के हाथ पर रखकर उसे सहलाया-‘‘ले, यह पैसे लेजा और टॉफी खा आ। और देख, बरामदे में जूठे बरतन पड़े हैं न, उनको लाकर टंकी के नीचे धो ले।‘‘

लड़के ने रुपया वापस फेंक दिया और ज़मींदार के हाथ से अपनी किताब झटक कर पुनः पढ़ने लग गया था, यथावत।

हतप्रभ ज़मींदार ने रुपया उठा लिया। उलट-पुलट उसे विस्मित नेत्रों से अनवरत निहारता रहा। वह जितनी गौर से देखता, रुपया उसे उतना ही धुंधला नज़र आता।

एकाएक उसकी आँखें एक करिष्मा देखने को विवश थीं। रुपया शनैः शनैः ठीकरी में तब्दील हो रहा था।

अन्तर

रत्नकुमार सांभरिया

घोड़े की पीठ पर दिनभर पड़े चाबुक नील बनकर उभर आए थे। रोएं-रोएं लहू चुहचुहा रहा था। टीस के मारे वह बार-बार पैर पटकता, गर्दन झटकता था। पीठ के असहनीय दर्द को आँसुओं में बहा देना चाहता था। भूख से कुलबुलाती अंतड़ियों ने उसे चारे में थूथन गड़ाने को विवष कर दिया।

दर्द से गीली हो गईं घोड़े की आँखें एकाएक अपने मालिक की ओर घूमीं। वह थान के पास चारपाई डाले बैठा अपनी हथेली पर मेहंदी लगा रहा था। घोड़े का मन व्यथित हो गया। आँखें डबडबा आईं। गर्दन हिलाई और अश्रुकण नीचे झटक दिये। चारा छोड़ दिया। वह दो टापें आगे बढ़ा।

दिनभर चले चाबुकों से मालिक की हथेली छिल गई थी। फफोले उठ रहे थे। चाबुक से आहत मालिक की हथेली को घोड़ा अपनी नर्म-नर्म जीभ से सहलाने लगा था। दर्द करते फफोलों को राहत मिलेगी।

देशद्रोही

स्वतंत्रता दिवस की पहली वर्षगाँठ थी। जिस मैदान में झण्डारोहण होना था, वह मानव-सागर से उफनता जा रहा था। लोगाँं की एक नज़र पाइप के ऊपरी सिरे से बंधे तिरंगे पर थी और दूसरी मंत्रीजी और उनके बगुले-से बग-बग सफेद परिधान पर। झण्डारोहण की उद्घोषणा के बाद मंत्रीजी नियत स्थान पर आ गए थे। उन्होंने डोर खींची तो वह अटक गई। झण्डा नहीं लहर सका। तालियाँ बजाते लाखों-लाख हाथ हवा में ही रुक गये थे। मंत्रीजी ने रस्सी इधर-उधर घुमाई, झटकी, निराषा ही हाथ लगी। उनकी आँखों से खून के फव्वारे छूट पड़े थे। दर्षकों में जो स्वतंत्रता सेनानी बैठे थे, उनके सिर शर्म से झुक गये।

इस अप्रत्याषित घटना से समूचा शासन और प्रषासन सकते में था।

"झण्डे का अपमान राष्ट्रीय अपमान है और जिस किसी ने भी यह अपराध किया है, उस पर राष्ट्रद्रोह का मुकदमा चलाया जाएगा।" यह घोषणा मंत्रीजी ने मौके पर ही कर दी थी।

झण्डे को पुनः नीचे उतारा गया। उतारते वक़्त उसका एक छोर माइक की ओर झुक गया था। झण्डे के रुँधे कण्ठ से विकल-वेदना निकली- "स्वाधीनता आँदोलन के दौरान यह व्यक्ति फिरंगी सेना का नायक था। राष्ट्रप्रेमी सेनानियों को 'देषद्रोही' कहकर उन पर जुल्म ढाया करता था। जिन हाथों में झण्डे होते, उन हाथों को कटवा डालता था। आज उन्हीं रक्त-रंजित हाथों से रोहण होकर मैं स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदान को कलंकित नहीं करना चाहता हूँ।"